International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 23-06-2026, Accepted: 23-07-2026, Published: 07-08-2026
Volume 12, Issue 3, 2026, Page No. 77-81

श्रीअयोध्या की बहु–सांस्कृतिक विरासतः अयोध्या की परंपराओं का एक ऐतिहासिक अनुशीलन

सच्चिदानंद तिवारी, प्रकाश तिवारी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.3.12208

सारांश
अयोध्या सनातन धर्म, आस्था और भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का पावन केंद्र है। वेदों में इसे देवताओं की पुरी और पुराणों में विष्णु की प्रथम पुरी माना गया है। सरयू नदी के तट पर बसी यह पावन नगरी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की जन्मभूमि होने के साथ–साथ मनु, इक्ष्वाकु, भगीरथ और रघु जैसे पौराणिक महान शासकों की कर्मभूमि रही है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने सन १५७४ ईस्वी में रामनवमी के दिन यहीं से कालजयी महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' की रचना आरम्भ की थी।
अयोध्या केवल हिंदू धर्म तक सीमित न होकर बहुसांस्कृतिक विरासत और सर्वधर्म समभाव की अनुपम प्रतीक है। यह नगरी जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव सहित पाँच तीर्थंकरों की पावन जन्मभूमि है। यहाँ महात्मा बुद्ध ने वर्षावास किया तथा सिख धर्म के प्रथम एवं अंतिम गुरुओं ने प्रवास कर मानवता का संदेश दिया। इसके साथ ही शीश पैगंबर और हज़रत बड़ी बुआ साहिबा की दरगाहें यहाँ की साझा सामासिक संस्कृति और धार्मिक सौहार्द को सुदृढ़ करती हैं।
नगरी के मध्य स्थित 'कनक भवन' श्रीराम और माता सीता का दिव्य लीला–निकेतन एवं रसिकोपासना का मुख्य केंद्र है, जिसका भव्य निर्माण ओरछा की महारानी वृषभानु कुँवरि ने कराया था। अयोध्या का शास्त्रीय व लोक संगीत, अष्टयाम सेवा, रामलीला, पद–गायन तथा कार्तिक एवं रामनवमी के विशाल मेले यहाँ की जीवंत परंपरा को प्रदर्शित करते हैं। संक्षेप में, अयोध्या सर्वसमावेशी चरित्र, नैतिक मूल्यों और राष्ट्रीय रागात्मक चेतना का स्वर्णिम प्रतीक है।

मूल शब्दः अयोध्या, श्रीरामचरितमानस, कनक भवन, सांस्कृतिक विरासत, रसिकोपासना, सांगीतिक और सर्वधर्म समभाव

भारतीय वाङ्मय, सनातन चेतना और ऐतिहासिक धरातल पर श्रीअयोध्या केवल एक भौगोलिक भू–भाग अथवा सामान्य नगर नहीं है, अपितु यह उस दिव्य राष्ट्रीय अस्मिता का साकार स्वरूप है जहाँ मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम ने अवतार लेकर लोक–कल्याणकारी आदर्शों की स्थापना की थी । वेदों और उपनिषदों में इस पावन पुरी को "देवताओं की सुरक्षित नगरी" कहकर अलंकृत किया गया है, जबकि पौराणिक आख्यानों ने इसे जगदाधार भगवान विष्णु की वैकुण्ठ लोक से अवतरित पहली पुरी के रूप में श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया है। महाकवि वाल्मीकि रचित आदिकाव्य रामायण के अनुसार, कोशल जनपद की यह समृद्ध राजधानी सरयू नदी के तट पर बारह योजन की लम्बाई और तीन योजन की चौड़ाई में एक सुव्यवस्थित आयताकार विन्यास में बसी हुई थी। इस पुरी की आदि–संकल्पना स्वयं मानव जाति के प्रथम राजा महाराज मनु द्वारा की गई थी, जिसे आदिग्रंथ रामायण में इस सुंदर सूक्ति द्वारा उद्घाटित किया गया है कि "मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम", जिसका अर्थ है कि मानव–सम्राट मनु ने स्वयं इस अद्भुत नगर का निर्माण किया था, और कालान्तर में इसे महाराज इक्ष्वाकु ने अपनी साम्राज्यिक राजधानी के रूप में वैभवशाली विस्तार प्रदान किया।
इस पौराणिक और भौगोलिक पृष्ठभूमि का सम्यक् विश्लेषण राय बहादुर लाला सीताराम, बी० ए० द्वारा संकलित तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग द्वारा वर्ष १९३२ में प्रकाशित कालजयी ग्रन्थ "अयोध्या का इतिहास" के पृष्ठों पर विस्तार से अंकित है, जो यह स्पष्ट करता है कि इस कोशल भूमि ने मानव सभ्यता के विकास में पथ–प्रदर्शक की भूमिका निभाई है। सरयू नदी की पावन धारा, जो साक्षात् परब्रह्म का ही द्रव रूप मानी जाती है, अपनी अविरल लहरों से अयोध्या के पावन घाटों जैसे गुप्तहरि, चक्रहरि, स्वर्गद्वार, ऋणमोचन और नागेश्वरनाथ आदि को निरंतर चौतन्य करती आ रही है। इस ऐतिहासिक नगर की सबसे अनुपम विशेषता इसका सर्वसमावेशी, बहु–सांस्कृतिक एवं उदारवादी समन्वय रहा है। यह केवल सनातनी वैष्णव मत की ही पीठिका नहीं रही, अपितु जैन मत के आदि तीर्थंकर ऋषभदेव सहित पाँच प्रमुख तीर्थंकरों की जन्मस्थली भी रही है । साथ ही, बौद्ध मत के प्रवर्तक गौतम बुद्ध ने यहाँ दीर्घकाल तक वर्षावास व्यतीत कर शांति का उपदेश दिया था। सिक्ख धर्म के पूज्य आदिगुरु नानकदेव और दशमेश गुरु गोविन्द सिंह ने भी यहाँ की यात्रा कर विश्व–कल्याण का संदेश दिया, जबकि यहाँ की पंचकोसी परिक्रमा परिधि के भीतर हज़रत शीष पैगम्बर की दरगाह और कृष्ण–भक्ति में लीन रहने वाली सूफी संत हज़रत बड़ी बुआ साहिबा की मज़ार कौमी एकता और अप्रतिम सामाजिक सौहार्द्र का जीवंत साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं।
इसी पवित्र प्रांगण के मध्य अवस्थित कनक भवन मन्दिर अयोध्या की माधुर्य भक्ति परम्परा का सर्वोत्कृष्ट मुकुटमणि है, जो त्रेतायुग में श्रीराम–जानकी का स्वर्णिम क्रीड़ा–निकेतन था और जिसे महारानी कैकेयी ने नववधू सीताजी को "मुँह दिखाई" के उपहार स्वरूप दिया था। समय की गर्द से जर्जर हुए इस कनक भवन का जीर्णोद्धार त्रेता में महाराज कुश, द्वापर में श्रीकृष्ण, कलियुग के प्रारम्भ में महाराज विक्रमादित्य और अंततः वर्ष १८९१ (विक्रम संवत् १९४८) में बुंदेलखंड के ओरछा राज्य की परम तपस्विनी महारानी वृषभानु कुँवरि जू देवी द्वारा अत्यंत कलात्मक अवध और राजपूताना वास्तुकला शैली में संपन्न कराया गया। अयोध्या की इस लोक–चेतना में कला और संगीत का गहरा अंतर्संबंध रहा है। नवाबी काल में संगीत परंपरा ने नया रूप ग्रहण किया, जहाँ अंतिम नवाब वाजिद अली शाह "अख्तर पिया" के उपनाम से ठुमरी की रचना करते थे और कथक नृत्य के लखनऊ घराने ने इसी भूमि के मन्दिरों की देव–आराधना से निकलकर शास्त्रीयता का चरम उत्कर्ष प्राप्त किया। लोकजीवन में रामकथा की व्याप्ति श्रीरामचरितमानस की चौपाइयों पर आधारित रामलीला संगीत के रूप में मुखरित होती है, जिसमें 'व्यास–परंपरा' के संगीतात्मक वाचन और ढोल, दमाऊँ तथा नगाड़ों की थाप पर दर्शकों में आध्यात्मिक रस का संचार होता है। प्रस्तुत शोध–पत्र का मूल उद्देश्य इसी आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, वास्तुकलात्मक तथा

सांगीतिक समन्वय की अमर गाथा को वैज्ञानिक एवं प्रमाणिक दृष्टि से विवेचित कर लोक के समक्ष पुनः प्रस्तुत करना है ताकि युगों–युगों से प्रवाहित इस मर्यादा और प्रेम की पावन त्रिवेणी को सहेजा जा सके ।

पौराणिक, वैदिक एवं भौगोलिक धरातल पर अयोध्या

भारतीय संस्कृति और सनातन चेतना के इतिहास में श्रीअयोध्या केवल एक भौगोलिक भू–भाग अथवा सामान्य नगर नहीं है, अपितु यह उस दिव्य चेतना का साकार स्वरूप है जहाँ मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम ने अवतार लेकर आदर्श मानवीय मूल्यों की स्थापना की थी । वेदों और उपनिषदों में इस पवित्र पुरी को देवताओं की नगरी कहकर महिमामंडित किया गया है, जबकि पौराणिक ग्रंथों ने इसे भगवान विष्णु की सर्वप्रथम वैकुण्ठ पुरी के रूप में स्वीकार किया है । महर्षि वाल्मीकि रचित आदिकाव्य रामायण के अनुसार, यह नगरी विशाल कोशल जनपद की वैभवशाली राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित थी । भौगोलिक दृष्टि से, आठ आवरणों और नौ द्वारों वाली यह दिव्य नगरी सरयू नदी के पावन तट पर बारह योजन की लम्बाई और तीन योजन की चौड़ाई में एक सुव्यवस्थित आयताकार विन्यास में बसी हुई थी । इस पुरी की प्रारम्भिक संकल्पना स्वयं मानव जाति के आदि–पुरुष महाराज मनु द्वारा की गई थी, जिसे कालान्तर में महाराज इक्ष्वाकु ने एक भव्य और अभेद्य साम्राज्यिक राजधानी के रूप में विकसित किया । महर्षि वाल्मीकि ने इस ऐतिहासिक सत्य को रेखांकित करते हुए लिखा है कि "मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम ", जिसका अर्थ है कि मनु ने स्वयं इस दिव्य नगरी का निर्माण किया था ।

इस पौराणिक और भौगोलिक पृष्ठभूमि का सम्यक् विश्लेषण राय बहादुर श्री अवधवासी लाला सीताराम, बी० ए० द्वारा संकलित तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०, प्रयाग द्वारा वर्ष १६३२ में प्रकाशित ग्रन्थ "अयोध्या का इतिहास" के पृष्ठ संख्या २४ पर विस्तार से प्राप्त होता है । इस ऐतिहासिक ग्रन्थ में लेखक ने प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर स्पष्ट किया है कि कोशल जनपद की सीमाएँ सई नदी से लेकर घाघरा नदी तक फैली हुई थीं । प्राचीन काल में सरयू नदी की महत्ता इतनी अधिक थी कि ऋग्वेद के दसवें मण्डल में भी इसकी पावन धारा का आह्वान सरस्वती और सिन्धु जैसी महान नदियों के साथ सामूहिक रूप से किया गया है । सरयू नदी के उद्गम के सन्दर्भ में मत्स्य पुराण, वायु पुराण और नारदीय पुराण में यह स्पष्ट कथन मिलता है कि यह पवित्र नदी वैद्युतगिरि के चरणों में स्थित मानसरोवर से उत्पन्न हुई है और महर्षि वशिष्ठ द्वारा तपस्या के प्रभाव से इस भूमि पर लाए जाने के कारण इसे "वाशिष्ठी" तथा प्रभु के नेत्रों से प्रकट होने के कारण "नेत्रजा" भी कहा जाता है । स्कन्द पुराण के सुप्रसिद्ध "अयोध्या–माहात्म्य" के अनुसार, सरयू की पावन धारा में स्नान करने मात्र से मनुष्य अपने प्रारब्ध कर्मों के बन्धन से मुक्त होकर श्रीराम के सायुज्य स्वरूप को प्राप्त कर लेता है । अयोध्या के उत्तर–पूर्व को धनुषाकार रूप में घेरती हुई सरयू नदी अनेक पवित्र घाटों और पौराणिक तीर्थों को उद्भासित करती है । इन तीर्थों में गुप्तहरि, चक्रहरि, विघ्ने वर, यमस्थल, चक्रतीर्थ, प्रह्लादघाट, ब्रह्मकुण्ड, ऋणमोचन, पापमोचन, सहस्रधारा, चन्द्रहरि, नागे वरनाथ, स्वर्गद्वार, रामघाट, श्रृंगीऋषि आश्रम, वाल्मीकि आश्रम तथा बिल्वहरि आदि प्रमुख हैं । तीर्थ की मूल अवधारणा जल से ही निर्मित होती है क्योंकि तीर्थ का शाब्दिक अर्थ ही तारने वाला होता है । अयोध्या इस दिव्य अवधारणा को चरितार्थ करती हुई सरयू के अतिरिक्त तिलोदकी गंगा (तिलई), तमसा (मड़हा), वेदश्रुति (बिसुही), धेनुमती (गोमती) तथा मंजूषा (मझुई) जैसी पवित्र जलधाराओं से अभिसिंचित है । एक प्राचीन भक्तिमूलक आख्यान के अनुसार, तिलोदकी गंगा की धारा मणिपर्वत के नाम से प्रसिद्ध "रत्नाचल" की तलहटी में श्रावण मास में उमड़कर श्रीराम–जानकी जी से मिलने आती है, जब वे वहाँ झूलन–विहार के लिए पधारते हैं । इस अद्भुत संयोग को आधार बनाकर श्रावण मास की मधुश्रवा अर्थात् ठकुराईन तीज के पावन दिन सम्पूर्ण अयोध्या से श्रीराम–जानकी के विग्रह मणिपर्वत पर झूला–विहार के लिए प्रस्थान करते हैं ।

अयोध्या की संगीत परम्परा

कनक–भवन, अष्टयाम सेवा में नित्य गाये जाने वाले पद

अयोध्या के मन्दिरों में "कनक भवन मन्दिर" का स्थान आध्यात्मिक और स्थापत्य दोनों ही दृष्टियों से सर्वोपरि है । स्वामी जयरामदेव द्वारा मूल संकलित तथा अजय कुमार छावछरिया द्वारा वर्ष २०२० में संशोधित–सम्पादित होकर श्री वृषभान धर्म सेतु प्राइवेट ट्रस्ट, कनक भवन, अयोध्या से प्रकाशित ग्रन्थ "श्री कनक भवन महिमा एवं वृषभान विनोद" के पृष्ठ संख्या ७–६ पर इस भव्य मन्दिर के ऐतिहासिक और आध्यात्मिक स्वरूप का असाधारण वर्णन प्राप्त होता है । कनक भवन मूलतः त्रेतायुग में भगवान श्रीराम और जगतजननी सीताजी का क्रीड़ा–निकेतन और सोने से मढ़ा हुआ भव्य महल था, जिसे महाराज दशरथ ने कैकेयी के अनुरोध पर वि वकर्मा की प्रत्यक्ष देखरेख में कलात्मक रूप में निर्मित करवाया था । महारानी कैकेयी ने इसे अपनी बड़ी बहू सीताजी को विवाह के उपरान्त "मुँह दिखाई" के पावन उपहार के रूप में प्रदान कर दिया था ।

त्रेतायुग के अवसान के पश्चात, जब अयोध्या उजड़ने लगी, तब श्रीराम के सुपुत्र महाराज कुश ने इस स्थल पर कनक भवन का जीर्णोद्धार करवाकर युगल सरकार की लघु आकार की मूर्तियाँ स्थापित कीं । द्वापरयुग के मध्य में महाराज ऋषभदेव ने पुनः इसका निर्माण कराया । द्वापरयुग के अन्त में, जब भगवान श्रीकृष्ण जरासंध का वध करने के उपरान्त प्रमुख तीर्थों की यात्रा पर निकले, तो वे इस टीले पर पहुँचे । वहाँ उन्होंने पद्मासना नामक एक परम तपस्विनी देवी को ध्यानमग्न देखा और कनक भवन के टीले को खुदवाकर त्रेताकालीन प्राचीन मूर्तियों को पुनः स्थापित किया । कलियुग में सर्वप्रथम महाराज विक्रमादित्य ने युधिष्ठिर संवत् २४३१ की पौष कृष्ण द्वितीया, मंगलवार को इस मन्दिर का भव्य जीर्णोद्धार कराया और उन प्राचीन मूर्तियों की मन्दिर में पुनः प्रतिष्ठा की । इसके उपरान्त गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने भी विक्रम संवत् ४४४ (तदनुसार ३८७ ईस्वी) में इस देवालय की मरम्मत और विस्तार का कार्य कराया। विक्रम संवत् १०८४ (तदनुसार १०२७ ईस्वी) में महमूद गजनवी के सेनापति सैयद सालारजंग द्वारा इस देवालय को ध्वस्त कर दिया गया, परन्तु तत्कालीन पुजारी देवराज ने उन परम पवित्र विग्रहों को बचाकर अपने घर में स्थापित कर लिया ।

अयोध्या में रामोपासना का सबसे महत्त्वपूर्ण, मनोहारी एवं श्रद्धास्पद मन्दिर कनक भवन है। इस मन्दिर का निर्माण ओरछा रियासत की महारानी श्रीमती वृषभानु कुँवरि जू देवी द्वारा सन् 1885 ई. में कराया गया था। इस मन्दिर के प्रबन्ध के लिये 'श्री वृषभान धर्म सेतु प्राईवेट ट्रस्ट' की स्थापना भी सन् 1900 ई. में की गयी। यह जानना भी दिलचस्प है कि महारानी के पति महाराजा श्री सवाई महेन्द्र प्रताप सिंह जू देव ने इसी तर्ज पर कनक भवन निर्माण के उपरान्त जनकपुर में श्री जानकी मन्दिर का निर्माण करवाया। प्राचीन मान्यता के अनुसार यह मन्दिर सोने का बना था तथा राम–विवाह के उपरान्त महारानी कैकेयी ने सीताजी को मुँह दिखाई स्वरूप इसे भेंट में उन्हें दिया था। तभी से इस मन्दिर की सत्ता एवं मान्यता जानकी जी के इर्द–गिर्द घूमती है। राम की उपासना का शिखर केन्द्र होने के बावजूद कनक–भवन को जानकी जी की उपासना एवं उनकी कृपा का प्रमुख तीर्थ माना जाता है।

अयोध्या के इस प्रमुख मधुरोपासना के केन्द्र में विगत एक शताब्दी से पर्वों, उत्सवों, मेलों एवं अन्यान्य अवसरों पर संगीत

समारोहों के आयोजन की एक निराली परम्परा रही है। एक स्तर पर यह कहा जा सकता है कि परम्परागत अर्थों में जन्म, झूला, होरी, कजरी, ब्याह, फूल–बंगला, रथयात्रा, नहान, परिक्रमा तथा मेले आदि के श्रुतिमधुर गीतों का सबसे प्रामाणिक और लोकप्रिय स्थान अयोध्या में यही मन्दिर ठहरता है।

कनक–भवन के विग्रहों के बारे में भी एक सुन्दर स्थापना यह है कि सबसे बड़ी मूर्ति को महल बिहारी सरकार कहा जाता है क्योंकि उनका विग्रह अपनी नियत महल की जगह से कभी नहीं हटता। दूसरा विग्रह प्राचीनतम विग्रह है, जिसे कनक भवन झूलन बिहारी सरकार कहा जाता है क्योंकि यही विग्रह सावन में मन्दिर के गर्भगृह से निकलकर जगमोहन में झूला पर पधारने के लिए आता है। इसी विग्रह सरकार का विवाह भी भाँवर मण्डप में सम्पादित किया जाता है। तीसरा विग्रह सबसे छोटा विग्रह है, जो अष्टधातु से निर्मित है। इसी विग्रह को कनक भवन के प्रधान अर्चक अपनी गोदी में बिठाकर चाँदी–सोने के गंगा–जमुनी काम की पालकी में श्रावण शुक्ल तीज के दिन मणिपर्वत पर झूलनोत्सव के लिए तथा अगहन में विवाह–पंचमी के दिन वर रूप में इसी पालकी की बारात में मन्दिर प्रांगण से बाहर ले जाते हैं। इसी कारण इस विग्रह का नाम मणिपर्वत झूलन बिहारी सरकार या उत्सव बिहारी सरकार कहा जाता है। ओरछा राजघराने के वंशज भूतपूर्व महाराज एवं 'श्री वृषभान धर्म सेतु प्राईवेट ट्रस्ट' के अध्यक्ष महाराजा श्री मधुकर शाह जूदेव जी ने मुझे ऐतिहासिक प्रमाण का यह तथ्य बताया है कि इन्हीं उत्सव बिहारी सरकार के पालने में स्थापित श्री शालिग्राम जी का विग्रह उनकी परदादी एवं कनक–भवन की संस्थापिका महारानी श्री वृषभान कुँवरि जू देवी जी के हाथों से पूजित प्राचीन शालिग्राम हैं अतः उनका विशेष सम्मान करना, राजघराने तथा कनक भवन दरबार की परम्परा का अंग रहा है। उन्होंने एक मार्मिक बात यह भी बताई कि महल बिहारी सरकार की मूर्तियों को महारानी ने अपनी देख–रेख में बनवाते समय शिल्पियों को चाँदी की छेनी हथौड़ी बनवाकर इस भाव से अर्पित की थी कि प्रतिमा तराशते समय बहुत हल्के ढंग से धीरे–धीरे आघात किया जाये, जिससे उनके श्रीरघुनाथ सरकार एवं जानकी जी को कष्ट न पहुँचे। यह सारे प्रमाण रसिक भावना, श्रद्धा और वात्सल्य का ऐसा अद्भुत संगम है, जिसकी त्रिवेणी में भक्तजन आज भी लगभग एक सौ चालीस वर्ष बीत जाने के बाद उसी मधुरावृत्ति से स्नान कर रहे हैं।

वर्तमान भव्य कनक भवन मन्दिर का निर्माण बुंदेलखंड के ओरछा राज्य की महारानी वृषभानु कुँवरि जू देवी द्वारा वशिष्ठकुण्ड के महात्मा उमापति त्रिपाठी की प्रेरणा से कराया गया । वर्ष १८८७ में आरम्भ हुआ यह निर्माण कार्य विक्रम संवत् १९४८ (तदनुसार वर्ष १८९१ ईस्वी) के वैशाख शुक्ल षष्ठी, गुरु पुष्य नक्षत्र में पूर्ण हुआ, जब प्राचीन विग्रहों के साथ–साथ श्रीराम–सीताजी की दो नवीन वृहदाकार मूर्तियों की भी प्राण–प्रतिष्ठा कराई गई । स्थापत्य की दृष्टि से यह मन्दिर अवध और राजपूताना शैली का एक अद्भुत संगम है । मन्दिर का गर्भगृह भू–तल से लगभग ३५ फुट की ऊँचाई पर अवस्थित है, जिसके सम्मुख संगमरमर का एक विशाल आयताकार आँगन सुशोभित है । मन्दिर की छत पालकी शैली की है, जो राजस्थानी और बुंदेली वास्तुकला की भव्यता को दर्शाती है । मन्दिर के गर्भगृह में तीन जोड़ी विग्रह विराजित हैं, जिनमें दाईं ओर महारानी वृषभानु कुँवरि द्वारा स्थापित विग्रह हैं, बाईं ओर विक्रमादित्यकालीन प्राचीन विग्रह हैं, तथा नीचे सोपान पर भगवान श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिष्ठित किए गए लघु विग्रह शोभायमान हैं । मन्दिर के बाहरी मण्डप की दीवारों पर प्रसिद्ध चौपाइयाँ और शिलालेख देवनागरी लिपि में उत्कीर्ण हैं, जो मन्दिर की ऐतिहासिकता और स्थापत्य कला की श्रेष्ठता को प्रमाणित करते हैं ।

अयोध्या का बहु–सांस्कृतिक एवं सर्वसमावेशी स्वरूप

अयोध्या की पावन भूमि केवल सनातन वैष्णव धर्म का ही केन्द्र नहीं रही, अपितु यह भारत की धार्मिक बहुलता, सौहार्द्र और सांस्कृतिक समन्वय का एक जीवंत प्रतिमान रही है । यतीन्द्र मिश्र द्वारा विमला देवी फाउण्डेशन न्यास के माध्यम से संचालित सांस्कृतिक गतिविधियों और उनके ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि भारत के मानचित्र पर अयोध्या ही एकमात्र ऐसा शहर है जहाँ विभिन्न जातियों, पन्थों और सम्प्रदायों की अन्तर्ध्वनियाँ एक साथ सुनाई देती हैं ।

जैन धर्म के अनुयायियों के लिए अयोध्या एक महान और पावन तीर्थस्थल है । जैन दर्शन के आदि प्रवर्तक ऋषभदेव (आदिनाथ), अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ और अनन्तनाथ जैसे पाँच परम पूज्य तीर्थंकरों की जन्मस्थली होने का गौरव इसी अवध भूमि को प्राप्त है । आदिनाथ का जन्मस्थल अयोध्या के शाहजूरान के टीले के निकट माना जाता है, जहाँ जैन समाज की गहरी आस्था जुड़ी हुई है । बौद्ध मत की दृष्टि से भी अयोध्या का कोशल क्षेत्र अत्यंत पवित्र रहा है, क्योंकि शाक्यमुनि गौतम बुद्ध की जन्मभूमि कपिलवस्तु और निर्वाणभूमि कुशीनगर दोनों ही तत्कालीन कोशल साम्राज्य के ही भाग थे । बुद्धदेव ने अपने जीवनकाल के लगभग सोलह वर्ष अयोध्या (साकेत) में व्यतीत किए थे और यहीं पर उन्होंने जनसामान्य को सत्य और अहिंसा का उपदेश दिया था । बौद्ध यात्रियों फाहियान और ह्वानच्वांग ने यहाँ बुद्धदेव के उस प्रसिद्ध दंतधावन वृक्ष (दतून वृक्ष) को देखा था जो दतूनकुण्ड के समीप स्थित था, जो आज भी बौद्ध श्रद्धालुओं के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है ।

सिख पंथ के महान गुरुओं– आदिगुरु नानकदेव जी, तृतीय गुरु अमरदास जी तथा दशम गुरु गोविन्द सिंह जी ने भी अयोध्या की पवित्र यात्रा की थी और यहाँ से वि व–कल्याण और मानवीय एकता का दिव्य संदेश दिया था । इसके साथ ही, इस्लाम और सूफी मत की मान्यताओं के लिए भी यह शहर अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है । अयोध्या के प्राचीन पंचकोसी परिक्रमा पथ के भीतर हज़रत शीष पैगम्बर की दरगाह, अड़गड़ा की दरगाह और कृष्ण–भक्ति के रस में डूबी सूफी सन्त हज़रत बड़ी बुआ साहिबा की पावन मज़ार स्थित है, जहाँ सभी धर्मों के लोग श्रद्धापूर्वक शीश झुकाते हैं ।

अयोध्या की सामाजिक समन्वयकारी छवि का एक सुंदर उदाहरण यहाँ की परिक्रमा परिधि के भीतर स्थित विभिन्न जातियों के "श्रीराम पंचायती मन्दिर" हैं, जिनमें मुराव पंचायती मन्दिर, निषादवंशीय मन्दिर, ठठेर मन्दिर, खटिक मन्दिर और यादव मन्दिर प्रमुख हैं । ये मन्दिर सिद्ध करते हैं कि श्रीराम समाज के प्रत्येक वर्ग के हृदय में समान रूप से रमे हुए हैं और यहाँ की सामाजिक व्यवस्था में वर्णाश्रम धर्म की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर एक विराट पारिवारिक जीवन की अवधारणा क्रियाशील रही है ।

अवध की सांगीतिक विरासत और नवाबी काल का कलात्मक परिष्कार

अवध के नवाबों के काल में संगीत, नृत्य और प्रदर्शनकारी कलाओं का जो विकास हुआ, उसने अवध को कला की दृष्टि से पूरे हिन्दुस्तान का दिल बना दिया था । इस ऐतिहासिक और सांगीतिक समन्वय का अत्यंत तथ्यपरक और सूक्ष्म विवेचन यतीन्द्र मिश्र द्वारा लिखित तथा भारती पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, फैजाबाद द्वारा वर्ष २०११ में प्रकाशित ग्रन्थ "अयोध्या की संगीत परम्परा" के पृष्ठ संख्या २६६ पर प्राप्त होता है । इस ग्रन्थ के अनुसार, अयोध्या की सांस्कृतिक थाती और उसका संगीत उतना ही ऊर्जस्वित और सहज रहा है, जितना काशी, वृन्दावन और प्रयाग का सांगीतिक वातावरण रहा है ।

गाजीयाबाद के वी० एम० एल० जी० कॉलेज के संगीत विभाग की एसोसिएट प्रोफेसर डॉ० शम्पा चौधरी द्वारा लिखित और शोध मंथन पत्रिका (अंक १०, संख्या १, जनवरी–मार्च २०१६) के पृष्ठ संख्या १६–२५ पर प्रकाशित शोधपत्र "अवध के नवाबों के काल में संगीत परंपरा" के अंतर्गत स्पष्ट किया गया है कि मुगल साम्राज्य के पतन के उपरान्त स्थानीय नवाबों के संरक्षण में अवध की कलात्मक विधाओं को अभूतपूर्व प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । इस सांगीतिक विकास में "ठुमरी" गायकी का विकास मील का पत्थर माना जाता है, जो अपनी कोमल भावनाओं, विरह और शृंगार के लिए जानी जाती है । अवध के अंतिम नवाब वाजिद अली शाह स्वयं एक महान संगीतकार और कला मर्मज्ञ थे, जो "अख्तर पिया" के उपनाम से ठुमरियों की रचना करते थे । उनके राजदरबार में विख्यात तवायफें जैसे बाईजी, मोतीबाई, गौहर जान और मुन्नीबाई संगीत की साधना करती थीं और शास्त्रीय संगीत को जनसामान्य के बीच लोकप्रिय बनाती थीं ।

इसी काल में "कथक नृत्य" का लखनऊ घराना अपनी नज़ाकत और नफासत के साथ विकसित हुआ । यद्यपि कथक की मूल जड़ें अयोध्या के मन्दिरों में की जाने वाली देव–आराधना से सम्बद्ध थीं, परन्तु लखनऊ के नवाबों के संरक्षण में पंडित कालका, बिन्दादीन महाराज, अच्छन महाराज और शंभू महाराज जैसे आचार्यों ने इसे शास्त्रीय परिष्कार के चरम उत्कर्ष पर पहुँचाया । नवाबी काल में शास्त्रीय खयाल, ध्रुपद के साथ–साथ कजरी, चौती, होरी और दादरा जैसी लोक शैलियों को भी शास्त्रीय गरिमा प्रदान की गई । नवाब वाजिद अली शाह के दरबार के विख्यात सितार वादक गुलाम रज़ा खाँ द्वारा खोजी गई सितार की गतें आज भी संगीत जगत में "रज़ाखानी गत" के नाम से विख्यात हैं । अवध की इस गंगा–जमुनी सांगीतिक तहजीब का प्रभाव ग्रामीण मुस्लिम समाज पर भी स्पष्ट दिखाई देता है, जहाँ बच्चे के जन्म के समय गाए जाने वाले "सोहर" (जिसे उलारा भी कहा जाता है) की रचनाओं और धुनों पर हिन्दू ग्राम्य गीतों और संस्कारों का प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है ।

रामलीला परम्परा, मंचन–शिल्प और लोक–अभिव्यक्ति

रामलीला भारतीय लोकनाट्य परम्परा की वह अमूर्त धरोहर है जो जनमानस में नैतिक आदर्शों और धार्मिक चेतना का संचार करती है । इस विधा का ऐतिहासिक और मंचीय विश्लेषण डॉ० भानुशंकर मेहता द्वारा लिखित और लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा वर्ष २०१६ में प्रकाशित ग्रन्थ "श्री रामनगर रामलीला" के पृष्ठ संख्या २२४ पर विस्तृत रूप से उपलब्ध है । इस ग्रन्थ के अनुसार, रामनगर की रामलीला अपने प्राचीन मंचन–शिल्प, दर्शकों की सक्रिय सहभागिता और प्राकृतिक परिवेश के कारण सम्पूर्ण वि व में अद्वितीय मानी जाती है, जहाँ पात्रों को साक्षात् देवस्वरूप मानकर उनकी विधिवत पूजा और विदाई की जाती है ।

प्रयाग में आयोजित होने वाली रामलीला का इतिहास भी मुगल काल से पूर्व का माना जाता है, जिसका विस्तृत वर्णन डॉ० योगेन्द्र प्रताप सिंह द्वारा सम्पादित पुस्तक "प्रयाग की रामलीला" (लोकभारती प्रकाशन, २०११, पृष्ठ संख्या ११८) में सप्रमाण प्राप्त होता है । इस ग्रन्थ के अनुसार, भारत में रामलीला की जड़ें ईसा की आरम्भिक शतियों तक गहरी हैं, जिसका सबसे प्राचीन साक्ष्य पतंजलि के महाभाष्य में मिलता है, जहाँ वानरों और राक्षसों के बीच युद्ध के प्रदर्शन का स्पष्ट संकेत उपलब्ध है ।

रामकथा का वैज्ञानिक, कलात्मक एवं अनुभूतिमूलक विमर्श

आधुनिक युग में रामकथा केवल श्रद्धा की विषय–वस्तु नहीं रह गई है, अपितु वैज्ञानिकों और विचारकों ने इसके भीतर छिपे गहन वैज्ञानिक सिद्धांतों और कलात्मक आयामों को उद्घाटित किया है । प्रो० एस० पी० गौतम द्वारा लिखित और लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा वर्ष २०१३ में प्रकाशित विशिष्ट ग्रन्थ "रामचरितमानस: ड्रीम ऑफ साइंस" के पृष्ठ संख्या १०४ पर यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने महाकाव्य के प्रथम श्लोक में ही विज्ञान के गहन रहस्यों की सराहना की थी । लेखक ने प्रमाणित किया है कि "श्रीरामचरितमानस" में सृष्टि के विकास, आनुवंशिकी के नियमों, परमाणु संरचना, रासायनिक परिवर्तनों और खगोलीय पूर्वानुमानों का अत्यंत सूक्ष्म और तर्कसंगत विवेचन प्राप्त होता है, जो आज के आधुनिक पर्यावरण विज्ञान के सिद्धांतों के समतुल्य ठहरता है । प्रो० गौतम द्वारा लिखित एक अन्य ग्रन्थ "श्रीरामचरितमानस की वैज्ञानिक टीका" (कोशल पब्लिशिंग हाउस, फैजाबाद, २०१४, पृष्ठ संख्या १५२) में भी स्पष्ट किया गया है कि विज्ञान, धर्म और अध्यात्म एक ही परम सत्य की तीन भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं, जिन्हें तार्किक आधार पर समझा जा सकता है ।

कला के धरातल पर रामकथा के विविध रूपों का विमर्श डॉ० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी द्वारा सम्पादित और अयोध्या शोध संस्थान, फैजाबाद द्वारा वर्ष २०१५ में प्रकाशित शोध ग्रन्थ "अष्टमंगल–कला प्रतीक" के पृष्ठ संख्या १५४ पर प्राप्त होता है । इस ग्रन्थ के अनुसार, भारतीय कलाओं में प्रतीकों के माध्यम से अमूर्त आध्यात्मिक सत्यों को मूर्त रूप प्रदान किया जाता है । इसी प्रकार डॉ० देशराज उपाध्याय द्वारा लिखित शोध ग्रन्थ "अयोध्या की मूर्तिकला" (श्रृंखला पब्लिशिंग हाउस, फैजाबाद, २०१५, पृष्ठ संख्या २२४) के अनुसार, अयोध्या की शास्त्रीय सीमा के भीतर स्थित लगभग डेढ़ सौ तीर्थस्थलों में जो मूर्तियाँ और भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं, वे इतिहास के साथ–साथ उत्कृष्ट भारतीय कला और वास्तुकला के प्राचीनतम दस्तावेज हैं । छत्तीसगढ़ के लोकजीवन में राम की व्याप्ति का सघन प्रलेखन अजय अटपटू द्वारा सम्पादित ग्रन्थ "छत्तीसगढ़ के लोकजीवन में राम" (वाणी प्रकाशन, दिल्ली, २०१५, पृष्ठ संख्या १६२) में मिलता है, जहाँ राम–राम, सीताराम का अभिवादन लोक के दैनिक जीवन और आत्मा का सहज स्वभाव बन गया है ।

इन शास्त्रीय और वैज्ञानिक विमर्शों के साथ–साथ, कनक भवन मन्दिर के सेवकों और पुजारियों द्वारा अनुभव किए गए साक्षात् चमत्कारिक आख्यान इस दिव्य सत्ता की प्रासंगिकता को और अधिक सुदृढ़ करते हैं । "श्री कनक भवन महिमा एवं वृषभान विनोद" ग्रन्थ के लेखक अजय कुमार छावछरिया ने मन्दिर में वर्ष १६८७ से अनवरत सेवा कार्य करते हुए कई ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है जो आँखों देखी और प्रामाणिक हैं । लेखक के अनुसार, वर्ष १६६३ के दिसंबर माह में मन्दिर के शिखरों से चोरी गए सोने के प्राचीन कलश फैजाबाद रेलवे स्टेशन पर साबरमती एक्सप्रेस के छूट जाने के कारण प्लेटफार्म पर बोरे में लावारिस पड़े मिले थे, जिससे मन्दिर के बेगुनाह सेवकों की रक्षा हुई और षड्यंत्रकारियों का पर्दाफाश हुआ ।

लेखक ने स्वयं पर हुए एक जानलेवा हमले की घटना का प्रत्यक्ष साक्ष्य देते हुए लिखा है कि मन्दिर की व्यवस्था के दौरान असामाजिक तत्वों द्वारा उन पर लाठियों और घूसों से प्रहार किया गया था, जिससे उनका सिर बुरी तरह फट गया और प्रचुर मात्रा में रक्त बहने लगा था । परन्तु सबसे बड़ा आश्चर्यजनक और दिव्य सत्य यह रहा कि माथे पर गहरी चोट लगने और आँखों में खून भर आने के बावजूद उन्हें किसी भी प्रकार के दर्द, सूजन अथवा थकावट का लेशमात्र भी अनुभव नहीं हुआ, और वे अगले दिन भी मन्दिर का लेखा–जोखा सम्भालने का कार्य यथावत करते रहे । लेखक की यह अटूट मान्यता है कि "जब मुझ पर लाठियों से प्रहार हो रहे थे, तब साक्षात् कनकविहारी भगवान श्रीराम और भगवती सीता जी ने अपने पीताम्बर और साड़ी को एक अभेद्य ढाल की तरह मेरे माथे पर फैला दिया था, अन्यथा उस घातक प्रहार से मेरा जीवित बचना सर्वथा असम्भव था।"

इसी प्रकार मन्दिर के जगमोहन में झाड़ू लगा रहे एक अत्यंत वृद्ध सेवक चतुरी के कान के पास से स्पर्श करते हुए लोहे का एक १५–२० फुट लम्बा और तीक्ष्ण कील युक्त भारी पाइप ऊपर से गिरा था, जो सीधे उसके पैर में धंस गया, परन्तु उसकी जान बाल–बाल बच गई । मन्दिर के जगमोहन में ही आरती के ठीक बाद परिक्रमा कर रहे श्रद्धालुओं के हटने के ठीक एक सेकेन्ड के भीतर ऊपर से भारी काँच जड़ा हुआ चित्र टूटकर नीचे गिरा था, जिससे सिद्ध होता है कि कोई अदृश्य ईश्वरीय सत्ता अपने शरणागतों की चौबीसों घण्टे रक्षा करती है । मन्दिर के निर्धन पुजारी पंडित रवीन्द्र पाठक की मिठाई खाने की इच्छा होने पर साक्षात् प्रभु द्वारा एक अपरिचित सेठ के रूप में आकर उन्हें पूरियों और उत्तम मिठाइयों से भरा डिब्बा सौंपने की घटना भी इसी सत्य को पुष्ट करती है । ये अनुभूतिमूलक आख्यान सिद्ध करते हैं कि श्रद्धा और प्रेम के धरातल पर आज भी प्रभु अपने भक्तों के लिए तत्पर रहते हैं ।

निष्कर्ष

सम्पूर्ण विश्लेषण के प्रकाश में यह स्पष्ट होता है कि श्रीअयोध्या की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सांगीतिक विरासत अनंत काल के प्रवाह में भी अपनी दिव्य चमक को खोती नहीं है । यह पावन नगरी वैदिक ऋचाओं के मन्त्रों से लेकर, जैन और बौद्ध दर्शन की परम शांति, सिक्ख गुरुओं के दिव्य उपदेशों, सूफी संतों की प्रेममयी साधना और अवध के नवाबों के कलात्मक परिष्कार की एक ऐसी बहुरंगी और जीवंत गंगा–जमुनी त्रिवेणी है जिसने सम्पूर्ण भारत को एकता के अटूट सूत्र में पिरोया है । कनक भवन का स्वर्णिम स्थापत्य, सरयू की अविरल कल–कल बहती पवित्र जलधारा, रामलीला का लोक–रंग और रामचरितमानस में सन्निहित गहन वैज्ञानिक सत्य इस बात की घोषणा करते हैं कि अयोध्या केवल एक मन्दिरों का नगर नहीं, अपितु भारत की राष्ट्रीय अस्मिता का परम पावन मस्तक है । इस महान विरासत को सहेजना, इसका शास्त्रीय प्रलेखन करना और इसमें निहित मर्यादा, त्याग और सर्वसमावेशी जीवन मूल्यों को अपने आचरण में उतारना ही इस पवित्र वसुंधरा के प्रति हमारी सच्ची और सार्थक श्रद्धांजलि होगी ।

इस शोध का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और क्रांतिकारी निष्कर्ष यह उभरकर सामने आता है कि अयोध्या की पहचान कभी भी संकीर्ण संप्रदायवाद से नहीं बँधी रही, अपितु इसका स्वरूप हमेशा से सर्वसमावेशी और बहु–सांस्कृतिक रहा है । वैष्णव मत की इस परम पीठिका में जैन धर्म के पाँच तीर्थंकरों की जन्मस्थली का गौरव, शाक्यमुनि बुद्ध के दीर्घकालिक साधना वर्ष, सिख पंथ के पूज्य गुरुओं के मानवतावादी उपदेश और सूफी संतों की प्रेममयी साधना का जो सुंदर संगम मिलता है, वह संपूर्ण भारतवर्ष की अखंडता का जीवंत प्रतीक है । जैसा कि सुंदर भक्तिपरक आख्यानों में रेखांकित किया गया है कि, "प्रभु राम मन्दिरों की भव्यता में विराजने के साथ–साथ समाज की प्रत्येक जाति और वर्ग के पंचायती मन्दिरों में समान रूप से रमे हुए हैं"। यह सामाजिक समन्वय ही अयोध्या की असली अमूर्त धरोहर है।

सांस्कृतिक और कलात्मक धरातल पर कनक भवन की स्वर्णिम गाथा त्रेतायुग से लेकर द्वापर, कलियुग और अंततः ओरछा नरेश की महारानी वृषभानु कुँवरि जू देवी द्वारा कराए गए आधुनिक जीर्णोद्धार तक श्रद्धा और अटूट विश्वास की एक अटूट कड़ी प्रस्तुत करती है। वहीं, अवध के नवाबों के काल में विकसित हुई सांगीतिक विरासत, जिसमें ठुमरी गायकी, कथक नृत्य का लखनऊ घराना और लोक–संस्कारों के गीतों का अद्‌भुत गंगा–जमुनी समन्वय हुआ, यह सिद्ध करता है कि कला और अध्यात्म यहाँ परस्पर पूरक रहे हैं। इसके अतिरिक्त, रामनगर, प्रयाग और उत्तराखण्ड की 'व्यास–परंपरा' एवं 'जागर–शैली' में गाई जाने वाली रामलीला संगीत की संरचना ने यह प्रमाणित किया है कि "श्रीरामचरितमानस" की चौपाइयाँ और राग–रागिनियाँ केवल काव्य–ग्रंथ का हिस्सा नहीं हैं, वरन् वे लोक–मानस के हृदय की स्पंदन और सामूहिक लोक–अभिव्यक्ति का आधार हैं।

संदर्भ

1. अयोध्या का इतिहास– लेखक: रायबहादुर लाला सीताराम (बी.ए.), प्रकाशक: प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली (मूल प्रकाशन: १९३२ ई., पुनर्मुद्रण: २०२१ ई.), पृष्ठ संख्या: २३२।
2. भारतीय भाषाओं में रामकथा– सम्पादक: डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह, प्रकाशक: लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष: २००९ ई., पृष्ठ संख्या: २२०।
3. कोसल का इतिहास एवं संस्कृति– सम्पादक: प्रो. ठाकुर प्रसाद वर्मा, प्रकाशक: लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष: २०१० ई., पृष्ठ संख्या: २३६।
4. लोक राम–कथा– सम्पादक: डॉ. श्यामसुन्दर दुबे, प्रकाशक: लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष: २०११ ई., पृष्ठ संख्या: १७५।
5. प्रयाग की रामलीला– सम्पादक: डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह, प्रकाशक: लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष: २०११ ई., पृष्ठ संख्या: ११८।
6. देश की पारम्परिक लोकचित्र शैलियों में रामकथा– सम्पादक: बसन्त निरगुणे, प्रकाशक: अयोध्या शोध संस्थान, फैजाबाद, प्रकाशन वर्ष: २०११ ई., पृष्ठ संख्या: १८४।
7. अयोध्या की संगीत परम्परा– लेखक: यतीन्द्र मिश्र, प्रकाशक: भारती पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, फैजाबाद, प्रकाशन वर्ष: २०११ ई., पृष्ठ संख्या: २६६।
8. राम: कला संदर्भ– सम्पादक: डॉ. प्रदीप कुमार सिंह, प्रकाशक: सरस्वती प्रकाशन, मुम्बई, प्रकाशन वर्ष: २०१२ ई., पृष्ठ संख्या: १७६।
9. भारतीय संस्कृति में गज– सम्पादक: रमाशंकर, प्रकाशक: कोशल पब्लिशिंग हाउस, फैजाबाद, प्रकाशन वर्ष: २०१३ ई., पृष्ठ संख्या: १६०।
10. श्रीरामचरितमानस की वैज्ञानिक टीका– लेखक: प्रो. एस. पी. गौतम, प्रकाशक: कोशल पब्लिशिंग हाउस, फैजाबाद, प्रकाशन वर्ष: २०१४ ई., पृष्ठ संख्या: १५२।
11. श्री लीला रामायण– लेखक: डॉ. भानुशंकर मेहता, प्रकाशक: लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष: २०१४ ई., पृष्ठ संख्या: २६०।
12. भारतीय भाषाओं में रामकथा: अवधी भाषा– प्रधान सम्पादक: डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह, सम्पादक: डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, प्रकाशक: वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष: २०१५ ई., पृष्ठ संख्या: १५६।
13. अयोध्या की मूर्तिकला– लेखक: डॉ. देशराज उपाध्याय, प्रकाशक: श्रृंखला पब्लिशिंग हाउस, फैजाबाद, प्रकाशन वर्ष: २०१५ ई., पृष्ठ संख्या: २२४।
14. छत्तीसगढ़ के लोकजीवन में राम– सम्पादक: अजय अटपटू, प्रकाशक: वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष: २०१५ ई., पृष्ठ संख्या: १९२।
15. श्री रामनगर रामलीला– लेखक: डॉ. भानुशंकर मेहता, प्रकाशक: लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष: २०१६ ई., पृष्ठ संख्या: २२४।